समरथ

जनवरी-फरवरी 2007 ◆ नई दिल्ली

लोकतंत्र की बढ़ती चाहत

तमाम विरोधाभासों के बावजूद दक्षिण एशिया के लोगों में लोकतंत्र के प्रति आस्था मजबूत हुई है और वे शासक के रूप में चुने हुए प्रतिनिधि चाहते हैं।

बैंक अब टेकओवर के लिए लोन देंगे

परमाणु कार्यक्रम बंद करेगा उत्तर कोरिया

सेना लोकतंत्र की सहायक या विरोधी

कश्मीर में सेना द्वारा निर्दोष लोगों के साथ ज्यादती

पूर्वी उत्तर भारत द्वारा सशस्त्र सेना विशेषाधिकार अधिनियम के विरोध में प्रदर्शन धरने 'इरोम शर्मिला' द्वारा 7 साल का लम्बा अनशन

मानव विकास कहें या पतन

निठारी कांड जहां दर्जनों बेकसूर मासूमों ने गंवाई अपनी जान।

इस कांड के पीछे संदिग्ध रही पुलिस की भूमिका।

लोकतंत्र : एक कोलॉज

1857 से लेकर 2007 तक का सफ़र। पूरे 150 साल का सफ़र। 1857 से शुरू होकर 90 साल तक मुल्क के लिए कुर्बानी और शहादत की लम्बी दास्तान हमारी साझी विरासत है। साझा संघर्ष की साझी विरासत। फिर सुब्हे आज़ादी आयी। गुलामी की ज़ंजीरें टूटी और आम नागरिक ने अपने राज का सपना देखा। मख़दूम मुहीउद्दीन के शब्दों में 'वह आज़ादी, आज़ादी क्या—मज़दूर का जिसमें राज न हो।' फिर फ़ैज़ ने ज़बान यूं खोली 'चले चलो कि वह मंज़िल अभी नहीं आयी।' मज़दूर-किसान का राज तो दर-किनार लोकतांत्रिक मूल्यों की भी बलि चढ़ना शुरू हो गयी। यह अंतहीन सिलसिला आज भी जारी है। आइए इसका वर्तमान ***अंशु*** *से सुनें :*

उन्हें जनादेश नहीं मिला
फिर भी वे
जनता को आदेशित कर रहे थे
वे अपने सारे उम्मीदवारों के
पूर्णांकों का कामन ले रहे थे
और प्राप्तांक आपस में जोड़ रहे थे
इस तरह सभी अयोग्य उम्मीदवार
उत्तीर्ण हो गये थे
उन्होंने कई बलात्कारों को मिलाकर
एक प्रेम की संज्ञा दे दी थी।

□ □ □

काला हान्डी में
एक माँ ने
अपने एक बच्चे को दूध पिलाने के वास्ते
दूसरे बच्चे को
सेठ को बेच दिया
वह बच्चा सेठ के मन्दिर में
गणेश जी के दूध पीने का
चमत्कार देखता रहा
और अब वह शहर में
सेठ जी के पोस्टर सॉट रहा है
जिसमें उन्हें डेयरी का ठेका
दिलाने की माँग की गई है

□ □ □

वे हफ्ता वसूली करते थे
अलग-अलग इलाकों में
धंधे की सुविधा के लिए
एक हुए वे
और कहने लगे
जनता एक हो गयी है
और हमी वसूली करें
यह उसकी सामान्य इच्छा है

□ □ □

वे सब सन्त थे
धन मद माया मोह सबसे ऊपर
इसलिए पवित्र राष्ट्र की
पवित्रतम प्रतिनिधि सभा में
जो कि देवर्षियों और ब्रह्मर्षियों की
अध्यक्षता में बनाई गई थी
अर्थनीति जैसी सांसारिक बातों पर बहस को
वे पाप समझते थे।

□ □ □

दि इण्डियन रिपब्लिकन प्राइवेट कम्पनी लिमिटेड के
शेयर धारकों के बीच
ऊँची बोलियाँ लगने का मौसम है
वे धर्म का लाभांश देंगे
वे जनेऊ का
और उनके पास अम्बेडकर की मूर्ति के हाथों में पकड़ी
संविधान की एक काल्पनिक प्रति का डिविडेंट है

कुछ भूतपूर्व विद्रोही
अच्छे और मानवीय मैनेजमेन्ट से
जनता की शोषण मुक्ति के आकर्षक इश्यू जारी करेंगे
नौकरशाह तेजड़ियों और मन्दड़ियों की तरह
पाले बदलेंगे
शेयर की तरह
जनता के 'होल्डर' बदले जाएँगे
पुलिस 'बल' लाठियों से बटोर रहा होगा पेपर
गुण्डे सौदा वार्ता आयोजित कर रहे होंगे
दूसरी कम्पनियों के लोग
शेयर खरीदकर कम्पनी पर कब्ज़े की सोचेंगे
बैंक के उच्चाधिकारियों की शक्ल में
चुनाव आयोग
लोकतंत्र के इस पूरे घोटाले को अन्जाम देगा।
□ □ □

उस समय
गायों के अतिरिक्त रक्षणीय कुछ भी नहीं था
औरतें, बच्चे, बूढ़े, जवान
संस्कृति और पर्यावरण से बाहर थे
पर्यावरण की शुद्धता और
आर्य संस्कृति ही
चुनाव का मुद्दा थी
उसमें सफलता के लिए
गो रक्षणी सभा के लिए
पहले यज्ञ में
सौ मनुष्यों की बलि दी गई।
□ □ □

विज्ञापनों की तरह दरपेश हैं चुनाव
पार्टियों के बाज़ार में मतदाता
विकल्पों से हैरान हैं
यानी किसमें है सुपर शक्ति
विकल्प यानी स्वतंत्रता
स्वतंत्रता यानी लोकतंत्र
कोई है... कोई है... कोई है... ऽ ऽ ऽ !
कौन चलायेगा पाँच साल सरकार
गति को तो छोड़िये
दाँव तो पहिए को गोल बनाने पर लगा है
वह हाथ जिसे पालना था
शरीर को
वह भारी हो चुका है इतना
कि शरीर उसे ढो रहा है
साईकिल चल रही है धक्के से
व्हील के दाँतों से अलग बिल्कुल अलग
चेन नाच रही है
...यानी कि
साईकिल का चलना अलग काम है
और पैडिल का चलना निहायत दूसरी बात
यानी कि
लोकतंत्र !
□ □ □

उन आम चुनावों में
गरीबी से बदहाल जनता के लिए
जो सबसे जरूरी रास्ते थे
उनके निशान
मत पत्र में नहीं थे
वे निशान
कुछ अजनबी और कुछ
जाने पहचाने से
मतदाताओं की पंक्ति के बाहर थे
मतपत्र की छपाई के वक्त
कम्प्यूटर के हाथ नहीं आये थे
वे मानव मस्तिष्क की
उर्वरतम कोख में पल रहे थे
'विधर्मी' नीरू और नीमा के हाथों
आकार पा रहे थे
उनमें ठप्पे नहीं लगने हैं
उन पर प्राणों की दस्तक दी जानी है
□ □ □

आज बहुत दिनों बाद फुरसत से
रुच-रुच कर नहाया
प्यार आया अपने ही बदन पर
शीशे के सामने खड़े होकर
पोंछा बदन
बाल काढ़े जनत से...
सँवरा करीने से
अचानक...
घिन आई अपनी कंचन सी काया से
जैसे किसी हिंसक व्यवस्था में
शांतिपूर्ण मतदान की ख़बर से आती है।
□ □ □

—अंशु मालवीय

लोकतंत्र का धर्म

■ बाबूलाल दहिया

कोई भी धर्म चाहे जिस परिस्थिति में विकसित हुआ हो पर उसके मूल में भय ही रहा है। वैज्ञानिकों का कथन है कि कभी बाढ़ तो कभी भूकम्प या हैजा, चेचक, प्लेग जैसी बीमारियों से असमय ही अपने परिजनों को काल-कवलित होते देख आदिम मनुष्य ने सहज ही मन में कल्पना कर ली कि कोई ऐसी शक्ति है, जो उसे परेशान कर रही है। उसने उस शक्ति की प्रार्थना की, नर बलि या पशु बलि चढ़ाकर उसे प्रसन्न करने का प्रयास किया।

सतना जिले में इस समय दो ही चर्चाएं आम हैं। पहला है विराट हिन्दू सम्मेलन, जिसकी तिथि और स्थान की जानकारी के लिए हर एक गांव में बड़े-बड़े अक्षरों से दीवारें रंगी हुई हैं और दूसरी चर्चा है अशरफ अली के मानवोचित कर्तव्य पालन में प्राणोंत्सर्ग की।

आज जब जगह-जगह विराट हिन्दू सम्मेलन हो रहा है तो कल इस्लामिक सम्मेलन भी होगा, हो सकता है परसों-नरसों इसाई, बौद्ध, जैन, सिक्ख समुदाय भी अपने-अपने धर्म के लिए चिन्तित हों क्योंकि एक धर्म या एक साम्प्रदायिकता हमेशा दूसरे को जीवन रस प्रदान करती है पर लोकतंत्र भी क्या अपने नागरिकों से किसी लोकतांत्रिक धर्म की अपेक्षा करता है? यह विचारणीय है। अगर हम धर्मों की गहराई में जाएं तो प्रकृति ने मनुष्य को हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि नहीं बनाया, उसने सभी को मनुष्य बनाया है। हां मनुष्य की प्रजातियां अवश्य हैं, जिन्हें दूर से देखकर भी पहचाना जा सकता है। वे हैं यूरोपाभ, मंगोलाभ और निग्रो, आस्ट्रेलियाम, जिनकी शारीरिक संरचना किसी खास क्षेत्र की जलवायु के अनुसार बनी है पर हमारे भारत जैसे विशाल देश में मनुष्य की ये तीनों प्रजातियां हैं। चीन, नेपाल सीमा से सटे भू-भाग में मंगोल प्रजाति के लोग हैं तो दक्षिण मध्य भाग में निग्रो प्रजाति के भी। उधर मध्य एशिया से अलग-अलग समय में आ-आकर बसने वाले आर्य यूरोपामों की संख्या भी कम नहीं, जिनका सत्ता और व्यवसाय में एकाधिकार जैसा है और हिन्दू-इस्लाम, सिक्ख, ईसाई, जैन आदि सभी धर्मों का राग अलापने वाला भी यही आर्यमूल समुदाय है, जो शारीरिक रूप से एक होने के बाद भी धार्मिक रूप से अलग-अलग है।

कोई भी धर्म चाहे जिस परिस्थिति में विकसित हुआ हो पर उसके मूल में भय ही रहा है वैज्ञानिकों का कथन है कि कभी बाढ़ तो कभी भूकम्प या हैजा, चेचक, प्लेग जैसी बीमारियों से असमय ही अपने परिजनों को काल-कवलित होते देख आदिम मनुष्य ने सहज ही मन में कल्पना कर ली कि कोई ऐसी शक्ति है, जो उसे परेशान कर रही है। उसने उस शक्ति की प्रार्थना की, नर बलि या पशु बलि चढ़ाकर उसे प्रसन्न करने का प्रयास किया। कालान्तर में कुछ लोग इस उपासना में अधिक रुचि लेने लगे, जिन्हें पुरोहित की संज्ञा देकर समाज ने ही उनके भोजन आदि की व्यवस्था की, यहीं से धर्म का गोरखधन्धा शुरू हुआ क्योंकि मुफ्त की रोटी तोड़ता वह पुरोहित अब काल्पनिक शक्तियों और उनकी उपासना पद्धति पर ही सारा चिन्तन करने लगा फिर भी वह धर्म का सरल रूप ही था, जिसमें प्रकृति पूजा थी पर नगरीय सभ्यता के विकास के साथ जटिल धर्म भी विकसित हुए, जो ग्रन्थ पैगम्बर और ईश्वर को आधार बना उच्च बौद्धिक स्वरूप ग्रहण करते चले गए। इसवी पूर्व के बौद्ध, जैन, ईसाई और सनातन धर्म कुछ इसी तरह के जटिल धर्म थे। आज से 1400 वर्ष पहले दक्षिण मध्य एशिया में एक और धर्म का प्रादुर्भाव हुआ, वह था इस्लाम धर्म। शुरुआत में यह धर्म पूंजीपतियों, अत्याचारी, सूदखोरों के खिलाफ गरीबों की एक सामाजिक क्रांति थी, जिसे वहां के बहुत बड़े समुदाय ने हाथों-हाथ अपनाया। कुछ दिनों पश्चात भारत में भी उसकी दस्तक सुनाई दी। भारत में तब चतुर्वर्णी व्यवस्था का बोलबाला था। चौथे वर्ण शूद्र की दशा तो कुत्ते, गधे जैसे मैला भक्षण करने वाले पशुओं से भी बद्तर थी। फलस्वरूप जिन शुद्रों में जरा भी स्वाभिमान था, वे समतावादी आडम्बर रहित इस्लाम धर्म में दीक्षित होते चले गए। राजाश्रय के कारण कुछ दूसरे लोगों ने भी इस धर्म को ग्रहण किया। इस तरह आज भारत में हिन्दू, इस्लाम ईसाई, जैन, सिक्ख, बौद्ध आदि सभी जटिल धर्म हैं। यहां के मूल निवासियों का प्रकृति पूजक आदिम धर्म भी है, जो किसी ग्रन्थ पैगम्बर, ईश्वर के बजाय लोक परम्पराओं में है। विभिन्न जातियों, भाषाओं, बोलियों, संस्कृतियों और परम्पराओं में बंटे बाहुलतावादी भारत देश में लोगों का धार्मिक अलगाव भी कोई बहुत बड़ा आश्चर्य नहीं पर इन सब के बावजूद हमारा लोकतंत्र भी हमसे एक धर्म की अपेक्षा तो करता ही है। और वह है

शेष पृष्ठ 10 पर...

दलित आंदोलन : खैरलांजी के आगे

■ सुभाष गाताडे

जब हम चाय पीते हैं
गिलास अछूत हो जाते हैं
जब हम मन्दिर में प्रवेश करते हैं
भगवान अपनी सत्ता खो देते हैं
जब हम सांस लेते हैं
तो क्या वे हवा का बहिष्कार करेंगे?
सूरज की रौशनी में हम विचरण करते हैं
क्या वे सूरज को अलविदा कहेंगे?

जी. वेंकण्णा (तेलगू के मशहूर कवि)

कहा जाता है वक्त बहुत बड़े-बड़े घावों को आसानी से भर देता है। लेकिन कई जख़्म, जो किसी समाज की सामूहिक स्मृति का हिस्सा होते हैं, वे इस बात को झुठलाते प्रतीत होते हैं। बीते 25 दिसम्बर को तमिलनाडु के ग्राम किझेवनमनी में जुटी हजारों की तादाद शायद इसी बात का एक और सबूत थी और ये ऐसे लोग थे जो किसी के बुलावे पर या कहने पर नहीं आये थे।

और यह सिलसिला बीते 38 सालों से लगातार चल रहा है, जब लोग झण्डे-बैनरों के साथ वहां जुटते हैं और कभी अपनों में ही रहे उन 44 महिलाओं और बच्चों को याद करते हैं, जो 25 दिसम्बर 1968 की उस मनहूस रात को उनसे बिदा हुए थे। निश्चित ही यह कोई स्वाभाविक मौत नहीं थी, वे सभी स्थानीय भूस्वामियों के गिरोह की अगुवाई में हुए हमले में मारे गये थे।

भूस्वामियों का गुस्सा इस बात पर था कि उस इलाके में मेहनतकशों के हक में काम करने वाली ताकतों - कम्युनिस्ट पार्टी - की अगुवाई में इन मजदूरों ने - वे सभी दलित जाति से ताल्लुक रखते थे - सम्मानजनक मजदूरी पाने के लिए हड़ताल की थी। और इस हड़ताल को कुचलने का यह आदिम तरीका भूस्वामियों ने अख्तियार किया था।

अगर आप कभी किझेवनमनी जायें तो इन शहीदों के स्मारक पर भी जरूर जा सकते हैं, जहां एक शीशे के बड़े बर्तन में उन तमाम लोगों की अस्थियां सुरक्षित रखी हुई मिलेंगी, जिन्हें इस घटना के चन्द रोज बाद महान स्वतंत्रता सेनानी आई मायन्डी भारती ने एकत्रित किया था।

किझेवनमनी को आज़ाद हिन्दुस्तान का पहला जनसंहार कहा गया था। लेकिन यह बात दावे के साथ नहीं कही जा सकती कि यह सिलसिला कहां खत्म होगा और कब दलितों-शोषितों की व्यापक आबादी बराबरी के साथ जीने का अधिकार हासिल करेगी।

इस बात को यहां रेखांकित करना जरूरी है कि इतनी व्यापक गोलबन्दी के बावजूद अदालत से हत्याकाण्ड के तमाम अपराधी बरी हुए थे। भले ही सेशन कोर्ट ने दस भूस्वामियों को दस साल की कैद बामशक्कत दी थी, मगर उच्च अदालत एवं उच्चतम अदालत ने उन्हें बरी कर दिया था। अदालत ने अपने मुख्य तर्क को इसी बात के इर्द-गिर्द बुना था : 'ये उंची जातियों के लोग हैं, जिनसे यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वे पैदल उस बस्ती तक गये होंगे।'

यह एक गहन अध्ययन का विषय है कि क्या किझेवनमनी के बाद सामने आये दलितों-शोषितों के इसी किस्म के संहार में भी क्या वास्तविक इन्साफ हो सका, या अदालतों ने उसी किस्म का एक फैसला सुना दिया तथा कोई तकनीकी बहाना बना कर अपराधियों को बरी किया।

□ □ □

पिछले दिनों सामने आयी चन्द घटनाओं ने गोया इस पहेली का उत्तर दे दिया है। महाराष्ट्र के भण्डारा जिले के खैरलांजी में दलित परिवार - सुरेखा भोतमांगे तथा उनकी बेटी प्रियंका तथा बेटे सुधीर एवं रौशन - के हुए सामूहिक हत्याकाण्ड के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यह बात भी जगजाहिर है कि घटना के 40 दिन बाद पुलिस एवं प्रशासन सही मायने में हरकत में आया और उसने गांव के दबंग लोगों को हिरासत में लिया। और उसके लिए समूचे महाराष्ट्र के स्तर पर दलितों एवं उनकी हमदर्द ताकतों को सड़कों पर उतरना पड़ा एवं जुझारू संघर्ष करना पड़ा। पिछले दिनों दिल्ली में 'सिटिजन्स फॉर जस्टिस एण्ड पीस' के तत्वावधान में आयोजित एक दो दिवसीय संगोष्ठी में सुरेखा के भाई सिद्धार्थ एवं राजेन्द्र गजभिये से मुलाकात हुई। लोगों को याद होगा कि भोतमांगे परिवार ने अपने मेहनत के बल पर बाकी बच्चों को पढ़ाया था, बिटिया प्रियंका 12 वीं कक्षा अच्छे नम्बरों से पास हुई थी और आगे पढ़ाई पूरा कर फौज में भर्ती होना चाह रही थी।

गांव के दबंग लोगों को यह बात नागवार गुजर रही थी कि वह किस तरह आगे बढ़ रहे हैं और उन्होंने गांव समाज के लिए उनकी जमीन की जरूरत की बात बता कर उन्हें प्रताड़ित करना चाहा था। सिद्धार्थ एवं राजेन्द्र दोनों बता रहे थे कि उनकी या भैयालाल की सुरक्षा का कोई इन्तज़ाम नहीं है। उन्हें गोया अपने पर छोड़ दिया गया है। युवा राजेन्द्र ने तो इस बात को भी रेखांकित किया कि इलाके की दबंग जातियों के लोग उन्हें कभी भी खत्म कर सकते हैं।

अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि चन्द साल बाद ऐसी स्थिति भी पैदा हो सकती है कि सरेआम बलात्कार एवं

हत्याकाण्ड के खैरलांजी के सभी दोषी बेदाग बरी हो जायें और टीवी के कैमरे के सामने 'न्यायपालिका पर पूरा भरोसा होने का ऐलान कर दें।' बिना किसी सुरक्षा के अपनी जान जोखिम में डाल कर समूचे प्रशासन, एवं इलाके के दबंग लोगों से मोर्चा लेने का साहस करने वाले इन लोगों को किस तरह मजबूर किया जा सकता है कि वह अपना बयान बदलें और उन आततायियों को बेदाग बरी होने का मौका दें।

इसी बात का एक प्रमाण दिसम्बर में सामने आये कर्नाटक अदालत के उस फैसले में भी दिखाई दिया जिसके अन्तर्गत हिन्दुस्तान भर में चर्चित कम्बलापल्ली जनसंहार के अपराधियों के बाइज्जत रिहा होने में दिखाई दिया। मार्च 2000 में सामने आया आठ दलितों का यह जनसंहार राष्ट्रीय अख़बारों में सूर्खियां बना था। इससे उपजे जनाक्रोश के मद्देनज़र तत्कालीन सत्तासीन कांग्रेस सरकार को न केवल अपराधियों को जल्द से जल्द गिरफ्तार करना पड़ा था बल्कि दलितों को अपने इस गांव से लगभग 40 किलोमीटर दूर दूसरे एक स्थान पर (जिसे 'नया कम्बलापल्ली' कहा जाता है) बसाना पड़ा था। वजह थी किसी दलित युवक के साथ किसी रेड्डी युवती की प्रेम कहानी, जो इन भूस्वामियों को बर्दाश्त नहीं हुई थी।

दिसम्बर के पहले सप्ताह में जबकि समूचा मुल्क दलितों पर बढ़ते अत्याचारों की घटनाओं को लेकर ज्यादा चिन्तित दिख रहा था, उस वक्त इस कत्लेआम के बारे में एक अनपेक्षित फैसला सामने आया है। अदालत ने सभी अपराधियों को बाइज्जत बरी कर दिया। बताया गया कि घटना के सभी 40 गवाहों ने अदालत में अपना बयान पलटा। वेंकटरायप्पा जिनकी पत्नी, बेटी तथा दो बेटे इस हत्याकाण्ड में आग की भेंट चढ़ा दिये गये थे, से बात करके इस बात का आसानी से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि आखिर सभी के सभी गवाह - जिसमें खुद वेंकटरायप्पा भी शामिल थे - ने अपना बयान क्यों बदला। डेक्कन हेराल्ड अख़बार के संवाददाता से बात करते हुए एक पीड़ित गंगुलप्पा ने ईमानदारी से इस बात को स्वीकारा कि अदालत में उसने अपना बयान बदला क्योंकि उसे अपने बच्चों की जिन्दगी की चिन्ता थी। संवाददाता के मुताबिक हालांकि कोई इस बात को खुलेआम स्वीकार नहीं रहा था, लेकिन इस 'नये कम्बलपल्ली' में बसे दलित आज भी खौफ खा रहे थे कि कहीं रेड्डी बदले के इरादे से हमला न कर दें।

लोग अक्सर इस मुल्क की विविधता में एकता की बात करते हैं। बाकी एकता के सूत्र कहां छिपे पड़े हैं, इसकी पड़ताल जमाना करेगा, लेकिन मुझे तो जाति उत्पीड़न की चौतरफा मौजूदगी, उच्च-नीच अनुक्रम तथा शुद्धता एवं प्रदूषण पर आधारित मनुवाद की व्यवस्था जिसका दायरा महज हिन्दू धर्म को मानने वालों तक सीमित नहीं है, उसमें उसके सूत्र दिखते हैं।

अब यहीं देखिये ना कि राजधानी दिल्ली से महज 75 किलोमीटर दूर गोहाना काण्ड में क्या हुआ?

लोगों को याद होगा महज डेढ़ साल पहले (31अगस्त 2005) गोहाना (जिला सोनीपत) के दलितों - वाल्मिकियों - के घरों पर इलाके की दबंग जातियों ने संगठित रूप में हमला किया था, जिसमें दलितों के मकानों में जबरदस्त लूटपाट की गयी थी और आग भी लगायी गयी थी। आपसी झगड़े में हुई एक जाट युवक की मौत का बदला लेने के नाम पर इस कार्रवाई को अंजाम दिया गया था। दलितों के जलते मकानों को और एकत्रित कर जला दिये गये सामानों की होली का सीधा प्रसारण समूचे मुल्क की अवाम ने अपनी आंखों से देखा था।

स्थानीय दबंग जाति द्वारा दलितों पर की गयी इस आक्रामक कार्रवाई का फौरी कारण भले ही उनकी बिरादरी के युवक की मौत का बदला लेना रहा हो, लेकिन उसकी जड़ें बहुत गहरी थीं। दरअसल वाल्मीकियों की सामाजिक गतिशीलता इलाके की सम्पन्न एवं दबंग जातियों के लिए ईर्ष्या का कारण बनी थी। कई सारे दलित युवकों ने पढ़ाई-लिखाई करने के बाद अपना परम्परागत पेशा छोड़ दिया था और वे बराबरी के साथ खड़े हो रहे थे। सदियों से उत्पीड़ित दलितों का अपने अधिकारों के प्रति सचेत होना गोया उन्हें बर्दाश्त नहीं हो रहा था।

अलबत्ता अब जबकि समूचे मुल्क में दलित अत्याचारों के मामले में नयी जागरूकता आने की बात की जा रही है, इस मामले में सामने आई सीबीआई की रिपोर्ट ने गोया समूची कहानी को सर के ऊपर खड़ा कर दिया है। राजधानी से निकलने वाले अख़बार में सीबीआई की चार्जशीट का जो हवाला दिया गया है, उसके मुताबिक–

हरियाणा के गोहाना में 2005 में हुए दंगों के मामले में सीबीआई ने अपने आरोप पत्र में कहा है कि बाल्मीकि बस्ती के कुछ लोगों ने मुआवजे की मंशा से अपने घरों में खुद ही आग लगाई थी। ... जिन 28 जले हुए घरों का सीबीआई ने मुआयना किया, उनमें से 19 बुरी तरह जल गये थे। इनमें नौ घरों का मुआयना किया गया, जिसमें लगता है कि इनमें मुआवजा लेने के लिए जान-बूझ कर आग लगाई गई।

—भास्कर, 12 जनवरी 2007, दिल्ली संस्करण

महज इतना ही नहीं कि अपनी बात को 'पुष्ट' करने के लिये आरोप पत्र यह भी बताता है कि 'गेट, ताले और दरवाजों को तोड़ने का कोई सबूत नहीं मिलता तथा कपड़े जैसी बेकार की चीजें कमरों में बटोरी हुई मिलीं और घर का सामान जानबूझ कर बिखेरा गया मिला।'

फिलवक्त यह कहना मुश्किल है कि सीबीआई द्वारा दाखिल किये गये आरोप पत्र के बाद प्रस्तुत मामला किस तरह आगे बढ़ेगा? क्या सीबीआई की इस एकांगी रिपोर्ट को खारिज करने के लिये दलित एवं अन्य जनतांत्रिक शक्तियां एकत्रित होंगी?

तमिलनाडु का किझेवनमनी हों, कर्नाटक का कम्बलापल्ली हो या हरियाणा का गोहाना हो या राजस्थान का कुम्हेर हो, जहां 1992 में स्थानीय गूजरों ने इसी तरह दलितों का संहार किया था, हिन्दुस्तान के किसी भी कोने में जाइये दलित उत्पीड़न के प्रति

सत्ताधारी तबकों की प्रतिक्रिया एक जैसी ही मिलेगी। गौरतलब है इस मामले में सरकार चाहे कांग्रेस की हो या भाजपा की या अन्य किसी पूंजीवादी पार्टी की, सभी एक जैसे ही पेश आते हैं। कुम्हेर का कत्लेआम इसकी सटीक बानगी प्रस्तुत करता है। इस हत्याकाण्ड को लेकर एक सदस्यीय जांच आयोग - लोढ़ा कमीशन - बना था। बताया जाता है उपरोक्त आयोग ने स्थानीय दबंग जातियों को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया है। लेकिन सात साल से अधिक वक्त हो गया इसकी रिपोर्ट सार्वजनिक नहीं की गयी है। पिछली गहलोत सरकार के समय कुछ दलित मानवाधिकार संगठनों ने प्रस्तुत रिपोर्ट को विधानसभा पटल पर रखने के लिए अदालत से गुहार लगायी थी। उच्च अदालत का फैसला भी आया कि 'कुछ निश्चित समय में इस रपट को पटल पर रखा जाये।' लेकिन आज तक - जबकि गहलोत सरकार गये तीन साल गुजर गये और भाजपा नीत सरकार की बिदाई का वक्त भी आ चुका है - कुम्हेर हत्याकाण्ड पर लोढ़ा आयोग की रिपोर्ट ठण्डे बस्ते में पड़ी है।

□ □ □

दलित अत्याचारों में बढ़ोत्तरी के सन्दर्भ में यह बात अक्सर भुला दी जाती है कि इनकी वजह यही है कि दलितों-शोषितों ने विरोध करना शुरू किया है और वे अपना हक मांग रहे हैं। सत्ता और सम्पत्ति के तमाम संस्थानों पर वर्णसमाज पर कुण्डली मार कर बैठे जिन तबकों का बोलबाला था, उन सभी स्थानों पर दलितों की दावेदारी बढ़ी है। शुद्धता और प्रदूषण पर टिके भारतीय समाज के व्यापक जनतांत्रिकीकरण का रास्ता खोलने की निश्चित ही यह शानदार शुरुआत है।

जैसे पिछले दिनों उड़ीसा, राजस्थान से ख़बर आयी कि किस तरह दलितों ने मन्दिर प्रवेश के लिए आन्दोलन किया, भीलवाड़ा के चामुण्डेश्वरी मन्दिर में स्थानीय गूजरों द्वारा दलितों के प्रवेश पर लगा दी गयी पाबन्दी का किस तरह पुरजोर विरोध हुआ या उड़ीसा के केन्द्रपाड़ा स्थित प्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर में प्रवेश के लिए वे जुझारू आन्दोलन पर उतारू हुए। इस बात पर बहस हो सकती है कि जिस हिन्दू धर्म ने उनके साथ पशुवत व्यवहार किया उसके देवताओं के समक्ष वह क्यों नतमस्तक होना चाहते हैं ! यह प्रश्न भी उठाया जा सकता है कि क्या किसी धर्म के अन्दर उनकी समस्या का समाधान है या नहीं ! लेकिन यह बात जगजाहिर है कि दलितों-शोषितों का तबका आज अपनी इतिहासप्रदत्त स्थिति को समाप्त करने के लिये बग़ावत पर आमादा है।

दलितों-शोषितों का यह विरोध सदियों से चले आ रहे सामाजिक-सांस्कृतिक अपमान के खिलाफ तो है ही, लेकिन इसका प्रगट भौतिक पहलू भी अब अधिकाधिक उजागर हो रहा है। राजस्थान में दलित मानवाधिकारों की रक्षा के लिए लम्बे समय से सक्रिय सेन्टर फॉर दलित राइट्स ने अपनी ताजा रिपोर्ट में दो बातों को स्पष्ट किया है। एक, सूबाई सरकार के दावों के विपरीत - जो कहते हैं कि जबसे भाजपा की सरकार आयी है, दलित अत्याचारों में कमी आयी है - सेन्टर का कहना है कि अत्याचारों में तीन गुना बढ़ोत्तरी हुई है; तथा दूसरी अहम बात कि इन विवादों में कई स्थानों पर भूमि विवाद जड़ में दिखता है। दिलचस्प है कि राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग द्वारा राष्ट्रपति को सौंपी 2004-2005 की रिपोर्ट इसी बात की ताईद करती दिखती है। मसलन उत्तर प्रदेश के मद्देनज़र आयोग ने आरोप लगाया है (हिन्दुस्तान, 3 नवम्बर 2006, लखनऊ संस्करण) कि वहां ज्यादातर अन्य पिछड़ी जातियों के साथ जमीनों के विवाद को लेकर अनुसूचित जाति पर अत्याचार बढ़ रहे हैं। जैसे उत्तर प्रदेश में दलित अत्याचार के 12,000 मामले दर्ज थे जिनमें ज्यादातर मामलों में अन्य पिछड़ी जाति के साथ जमीन विवाद के मामले थे।

दलितों के आक्रोश को अपनी-अपनी वोट बैंक की सियासत में मोड़ देने की कोशिशें भी कोई कम नहीं हो रही हैं। जैसे कांग्रेस पार्टी की लगातार कोशिश रही है कि वह दलितों की इस ताकत से अपने वोट बैंक को मजबूत करे। उत्तर भारत तथा तमाम अन्य स्थानों पर लम्बे समय तक उसका जो बोलबाला रहा, उसके केन्द्र में दलित शक्ति को अपने अन्दर समाहित रखने की उसकी कोशिशें रही हैं। विगत दो दशकों से संघ परिवारी संगठनों ने भी दलितों को अपनी जनद्रोही सियासत में जोड़ने की कोशिशें तेज की हैं और जिसमें वह आंशिक तौर पर सफल भी होते दिख रहे हैं। विभिन्न दलित संगठनों की भी भूमिका इस मामले में बेदाग नहीं कही जा सकती। उन्होंने भी दलित अस्मिता को अपने पक्ष में भुनाने की रणनीति ही अपनायी है। इसकी सबसे नकारात्मक मिसाल रिपब्लिकन पार्टी का खण्ड-खण्ड होता जाना या बहुजन समाज पार्टी के सत्ताकेन्द्री राजनीति में समाहित हो जाने में दिखता है। साफ है वास्तविक दलित अत्याचारों को दूर करने में न उनकी कोई रुचि है और न ही उनके पास ऐसा कोई कार्यक्रम है।

सूबा महाराष्ट्र में सामने आया खैरलांजी हत्याकाण्ड, मुख्यधारा के दलित आन्दोलन की दुर्दशा बयां करता दिखता है, हालांकि उसमें उम्मीद की नयी कोंपलें भी दिखती हैं। एक तरफ जहां राज्य सरकार अपने स्तर पर इस मुद्दे को रफा-दफा करना चाह रही थी, विपक्षी केसरिया परिवार अपने हितों के मुताबिक चुप्पी अख्तियार किये हुए था, उस वक्त दलित आन्दोलन की मुख्यधारा के नेतृत्व का रुख कोई अलग नहीं था। अब यह बातें इतिहास हो चुकी हैं कि दलित आबादी के स्वतःस्फूर्त गुस्से ने किस तरह एक भुला दिये गये मुद्दे को, राज्य की राजनीति के केन्द्र में ला खड़ा किया और राज्य सरकार को इस बात के लिये मजबूर किया कि वह कुछ कारगर कदम बढ़ाये।

वैसे खैरलांजी को एक नये दलित आन्दोलन का आगाज़ भी कहा जा सकता है, एक ऐसा आन्दोलन जो न केवल वर्ग-वर्ण-वर्चस्ववादी सत्ता प्रतिष्ठानों के खिलाफ खड़ा है बल्कि अपने भीतर के समझौतापरस्त तत्वों को भी बेनकाब करने के लिये तैयार है।

❐

सांप्रदायिकता : विरोध बनाम सेक्युलर आंदोलन

■ ख़ुर्शीद अनवर

आमतौर पर सांप्रदायिकता शब्द सुनते साथ हमारे ज़ेहन में आग, खून और दंगों की तस्वीरें उभरती हैं। भारत के आम इंसानों के बीच सांप्रदायिकता की धारणा भी यही है। समाज का बुद्धिजीवी तबका अपने तौर पर सांप्रदायिकता को अलग-अलग रूपों में परिभाषित करता आया है, और कर रहा है। लेकिन यह समझ और धारणा सिर्फ किताबी बातें रहकर एक सीमित दायरे में चर्चा का विषय बनती हैं। आम हिंदुस्तानी के लिए और यहां तक कि जुझारू और ईमानदार सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए भी सांप्रदायिकता मोटे तौर पर दंगे-फसाद, लूट-पाट, आगज़नी, क़त्ल, बलात्कार आदि से ही संबंधित है। इसका एक अर्थ यह भी लगाया जा सकता है कि जब ऐसी स्थिति न हो तो समाज में सांप्रदायिकता नहीं है और यदि है भी तो सक्रिय नहीं है। हममें से बहुत सारे लोग इस बात को बचकाना या उटपटांग समझ भी कह सकते हैं क्योंकि हममें से अधिकतर लोग लिखने-पढ़ने का काम करते हैं और किसी न किसी रूप में स्वयं को बुद्धिजीवी भी मानते हैं। आइए इसे एक ताज़ा उदाहरण के आइने में देखने की कोशिश करें।

2002 में गुजरात में भयावह सांप्रदायिक हिंसा हुई। हिंसा की शुरुआत से लेकर लगभग एक साल तक पूरे देश में सांप्रदायिकता के मुद्दे से सरोकार रखने वाले हर तरह के लोग दिन-रात सांप्रदायिकता विरोधी गतिविधियों में ही लगे रहे। देशभर में अनेक मंच भी बने, उनमें से कुछ सांप्रदायिकता विरोधी होने के नाम पर और कुछ अमन और एकता के नाम पर। फिर धीरे-धीरे आग और खून हिंसा और बलात्कार की घटनाएं कम होती गईं और उसी रफ्तार से हम कार्यकर्ताओं का जोश भी ठंडा पड़ता गया। और फिर केन्द्र सरकार बदली। लोगों ने जश्न भी मनाए। इसलिए नहीं कि केन्द्र में यू.पी.ए. सरकार ने सत्ता संभाली। बल्कि इसलिए कि केन्द्र से एन.डी.ए. सरकार हटी। अचानक अधिकतर कार्यकर्ताओं के सरोकारों की सूची से संभवतः सांप्रदायिकता का बिंदु कट गया और यदि कटा नहीं तो इस सूची में वो शब्द सबसे नीची कतार में पहुंच गया। आजकल इस पर बहस भी कम ही सुनाई पड़ती है। शायद हम मान बैठे हैं कि यह शांति का समय है लेकिन क्या ऐसा नहीं हो सकता कि यह वैसा ही शांति का समय हो जैसा शांति का समय गुजरात की हिंसा के पूर्व था। 27 फरवरी 2002 के लगभग छः महीने पूर्व तक किसी को ऐसा आभास भी नहीं था कि गुजरात जैसी अभूतपूर्व घटना घट सकती है। लेकिन छः महीने बाद गुजरात में दंगा नहीं जनसंहार हुआ। हम कह सकते हैं कि गुजरात में दंगों का अपना इतिहास है। सूरत, अहमदाबाद और बड़ोदा जैसे शहरों में अकसर सांप्रदायिक हिंसा भड़कती रही है। लेकिन दंगों का इतिहास देश के अन्य कोनों में भी है। मुंबई हो या भागलपुर, भिवंडी हो या मुरादाबाद, कानपुर हो या मुज़फ्फरपुर, मेरठ शहर हो या मलियाना अनगिनत दंगे इन शहरों के इतिहास में दर्ज हैं। समूचा उत्तर प्रदेश और बिहार हमेशा से ही दंगों की रणभूमि रहा है। कहीं ऐसा न हो कि इन इलाकों में जो शांति हमें दिख रही है वो उसी शांति से मिलती-जुलती हो, जो 2001 तक हमें गुजरात में देखने को मिल रही थी।

अमन के हम रखवाले

दरअसल हमारी मानसिकता सांप्रदायिकता विरोध की बन चुकी है। हम गाते जरूर हैं "अमन के हम रखवाले सब एक हैं" लेकिन शायद अमन की रखवाली के लिए हम निरंतर सक्रिय रहकर समय नहीं बर्बाद करना चाहते। इसलिए हर बार होने वाली सांप्रदायिक हिंसा के विरोध में काम करने के बाद खामोशी से अपने दूसरे कामों में लग जाते हैं और अचानक तब सक्रिय होते हैं जब एक और सांप्रदायिक हिंसा का दौर शुरू होता है।

हिंसा के बाद सौहार्द का संवाद

आम तौर पर हिंसा के बाद सांप्रदायिक सौहार्द कायम करने की जो प्रक्रिया चलती है उसकी कार्यनीति कुछ इस प्रकार होती है :

- शांति जुलूस निकालना
- हिंसा के विरुद्ध धरने आयोजित करना
- टकराव में शामिल समुदायों के बीच सौहार्द का संवाद कायम करना।

इन तमाम तरीकों का अपना एक महत्व है लेकिन कभी-कभी यह तरीके नाकाफी भी साबित होते हैं। मान लीजिए कोई बड़ी सांप्रदायिक हिंसा की घटना घटी। टकराव में शामिल तमाम पक्षों की मनःस्थिति उस समय क्या होगी, इसका अंदाज़ा लगाना कोई मुश्किल काम नहीं। एक-दूसरे की मंशा पर शक और अविश्वास की भावना, गुस्सा, शिकायत, आक्रामकता..... क्या ऐसी मनःस्थिति में सौहार्द के लिए संवाद सही नतीजे दे सकेगा। संभव है स्थिति की नज़ाकत देखते हुए तमाम पक्ष हिंसा रोकने पर राज़ी हो जायें लेकिन क्या वे भावनाएं भी

जाती रहेंगी जो उनके मन के अंदर घर कर चुकी हैं? दरअसल अनुभव बताते हैं कि ऐसे समय में एक-दूसरे की बात सुनने के लिए न कान खुले होते हैं और न दिमाग़ राज़ी होता है। कभी-कभी तो संवाद के दौरान भावनाएं और भी भड़क जाती हैं। और जिस समय एक-दूसरे की बात सुनने के लिए कान खुले होते हैं और दिमाग तैयार रहता है, उसे हम शांति का दौर मानकर कुछ करने का प्रयास ही नहीं करते।

आइए ज़रा एक नज़र पिछले एक साल में घटी सांप्रदायिक घटनाओं पर डालें। ध्यान रहे कि ये घटनाएं पिछले केवल एक वर्ष की हैं, जबकि यू.पी.ए. सरकार आते ही हमने जो शांति का समय घोषित किया उसे लगभग तीन वर्ष का समय बीत चुका है।

मऊ, उत्तर प्रदेश...............जनवरी 2006
भोजशाला, मध्य प्रदेश ....जनवरी-फरवरी 2006
इंदौर, मध्य प्रदेश ....जनवरी 2006
जयपुर, राजस्थान ....जनवरी 2006
फैज़ाबाद, उत्तर प्रदेश..........जनवरी 206
मेरठ, उत्तर प्रदेश ....फरवरी 2006
अलापुज़ा, केरल.................फरवरी 2006
लेह, जम्मू-कश्मीर ....फरवरी 2006
गोवा, गोवा......................मार्च 2006
लखनऊ, उत्तर प्रदेश...........मार्च 2006
मुजफ्फरपुर, उत्तर प्रदेश.......मार्च 2006
अलीगढ़, उत्तर प्रदेश...........अप्रैल 2006
बैंगलोर, कर्नाटक ....अप्रैल 2006
मराड, केरल......................अप्रैल 2006
खंडवा, मध्य प्रदेश ....अप्रैल 2006
पाली, राजस्थान.................अप्रैल 2006
अहमदपुर, मध्य प्रदेश.........मई 2006
बड़ौदा, गुजरात.................मई 2006
प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश..........7 जून 2006
बहरामपुर, उड़ीसा ....जुलाई 2006
भिवंडी, महाराष्ट्र ....जुलाई 2006
मंगलूर, कर्नाटक ....अक्टूबर 2006
गोरखपुर-मऊ, उत्तर प्रदेश....जनवरी-फरवरी 2007

अभी जबकि योगी आदित्यनाथ के इशारे पर समूचा पूर्वी उत्तर प्रदेश सांप्रदायिक टकराव के दौर से गुज़र रहा है फिर भी शांति कर्मियों में शांति ही छाई हुई है। क्या फिर किसी गुजरात का इंतज़ार है जिसके बाद ये खामोशी टूटेगी।

'उनका एजेण्डा'—हमारी प्रतिक्रिया

सांप्रदायिकता से लड़ने के लिए हमें अपने तरीकों में सोचे-समझे बदलाव लाने होंगे। हम सभी जानते हैं कि सांप्रदायिकता विरोध के बजाय हमें एक सेक्युलर आंदोलन की ज़रूरत है। यह कब तक चलता रह सकता है कि सांप्रदायिक शक्तियां अपना काम कर चुकने के बाद हमें अपने कर्तव्य निर्वाह पर मजबूर करें। अगर हम इन शक्तियों को कामयाब नहीं होने देना चाहते तो हमें उस समय का इस्तेमाल करना होगा जिसे हम शांति का समय समझ बैठते हैं। जिस तरह पिछले कुछ दशकों में नारीवादी आंदोलन और दलित आंदोलन ने अपने लिए स्वयं एजेंडा तैयार किया है उसी तरह हमें एक सेक्युलर आंदोलन खड़ा करना होगा और उसके लिए अपना एजेंडा खुद ही तैयार करना होगा। निश्चित रूप से नारीवादी आंदोलन और दलित आंदोलन ने पिछले कुछ दशकों में सफलता हासिल की है। और ये सफलता इसीलिए हासिल हो पायी है कि इन आंदोलनों ने महिला उत्पीड़न और जातिगत उत्पीड़न के विरोध में अपनी आवाज़ तो उठाई ही है, साथ ही सतत् रूप से और निरंतर यह आंदोलन अपना एजेंडा लेकर समाज के सामने पुरजोर आवाज़ें भी उठाते रहे हैं। अब ये आंदोलन महिला उत्पीड़न विरोधी आंदोलन अथवा जातिगत उत्पीड़न विरोधी आंदोलन न रह कर नारीवादी आंदोलन और दलित आंदोलन बन चुके हैं। इन आंदोलनों की आवाज़ों पर समाज का ध्यान आकर्षित होता है। सांप्रदायिकता के संदर्भ में भी आवश्यकता कुछ ऐसी ही है। नाम हम इसे कुछ भी दें लेकिन काम का एजेंडा और रास्ता चुनने में हमें अन्य आंदोलनों की राह ही चलना पड़ेगा।

हमारी भूमिका

सांप्रदायिकता की जड़ें मजबूत करने में सांप्रदायिक शक्तियां जिन हथियारों का इस्तेमाल करती हैं उन्हें मेरी एण्डरसन ने 'आघात न पहुंचे' नामक पुस्तक में अन्य टकरावों के संदर्भ में इस प्रकार श्रेणीबद्ध किया है :

- व्यवस्थाएं एवं संस्थान
- व्यवहार एवं रवैये
- भिन्न मूल्य एवं हित
- भिन्न अनुभव
- प्रतीक एवं पर्व

उसी पुस्तक में उन्होंने यह भी माना है कि जिस समाज में लोगों में नफरत फैलाने में उपरोक्त पांच पक्ष काम करते हैं वहीं उसी समाज में अमन की स्थानीय क्षमताएं भी पहले से मौजूद होती हैं जो इस प्रकार हैं :

- व्यवस्थाएं एवं संस्थान
- व्यवहार एवं रवैये
- साझे हित एवं मूल्य
- साझे अनुभव
- प्रतीक और पर्व

मेरी एण्डरसन के अनुसार तमाम टकरावों के संदर्भ में हमारी

भूमिका बनती है उपरोक्त जोड़ने वाले तत्वों अथवा अमन की स्थानीय क्षमता को निरंतर मजबूत बनाते रहना और समाज में तनाव पैदा करने वाले तमाम पक्षों को उसी मजबूती बनाने के दौरान कमजोर करना। भारतीय समाज में भी ऐसी व्यवस्थाएं और संस्थान, व्यवहार और रवैये, साझे मूल्य एवं हित, साझे अनुभव और प्रतीक एवं पर्व हमेशा से मौजूद रहे हैं जो समाज को जोड़े रखने का काम करते रहे हैं। यही हमारी साझी विरासत भी हैं। हमारी भूमिका बनती है कि इस साझी विरासत को चिन्हित करें और इन्हें मजबूत बनाने का काम करें। यदि हम एक सशक्त सेक्युलर आंदोलन की नींव रखना चाहते हैं तो इससे पहले कि वे व्यवस्थाएं एवं संस्थान, व्यवहार एवं रवैये, भिन्न मूल्य और हित, भिन्न अनुभव और विभेद पहुंचाने वाले प्रतीक एवं पर्व का इस्तेमाल करते हुए सांप्रदायिक शक्तियां हमारे बीच का सारा साझापन समाप्त करते हुए हमारी साझी विरासत को भी समाप्त कर दें, हमें खुद पहल करनी होगी और अपनी साझी विरासत को अपने सेक्युलर आंदोलन का हथियार बनाकर नारीवादी और दलित आंदोलन की तरह ही शांति की स्थापना के लिए एक नये दौर में प्रवेश करना होगा। ❐

हैवानियत

बड़ी मुश्किल से मियाँ-बीवी घर का थोड़ा-सा असामा[1] बचाने में कामयाब हो गए।
एक जवान लड़की थी, उसका पता न चला।
एक छोटी-सी बच्ची थी, उसको माँ ने अपने सीने के साथ चिमटाए रखा।
एक भूरी भैंस थी, उसको बलवाई हाँककर ले गए।
एक गाय थी, वह बच गई मगर उसका बछड़ा न मिला।

मियाँ-बीवी, उनकी छोटी लड़की और गाय एक जगह छुपे हुए थे।
सख़्त अँधेरी रात थी।
बच्ची ने डरकर रोना शुरू किया तो ख़ामोश फ़ज़ा में जैसे कोई ढोल पीटने लगा।
माँ ने ख़ौफ़ज़दा होकर बच्ची के मुँह पर हाथ रख दिया
कि दुश्मन सुन न ले। आवाज़ दब गई—बाप ने
एहतियातन बच्ची के ऊपर गाढ़े की मोटी चादर डाल दी।

थोड़ी दूर जाने के बाद दूर से किसी बछड़े की आवाज़ आई।
गाय के कान खड़े हो गए—वह उठी और दीवानावार[2] दौड़ती हुई डकराने लगी
उसको चुप कराने की बहुत कोशिश की गई, मगर बेसूद[3]...

शोर सुनकर दुश्मन क़रीब आने लगा।
मशालों की रोशनी दिखाई देने लगी।

बीवी ने अपने मियाँ से बड़े गुस्से के साथ कहा :
"तुम क्यों इस हैवान को अपने साथ ले आए थे?"

---

1. सामान; 2. पागलों की तरह; 3. बेकार।

लोकतंत्र का धर्म

...पृष्ठ 4 का शेष भाग

तमाम अनेकताओं के बावजूद भी एकता रूपी लोकतंत्री धर्म। किसके पूर्वज कब-कहां से आए? यह इतिहास की बातें हैं। यदि मध्य काल के बाहरी आक्रान्ताओं ने भारतीयों के ऊपर कहर ढाए हैं तो वैदिक काल के विदेशी आक्रान्ताओं ने भी यहां के मूल निवासियों के ऊपर कम अत्याचार नहीं किए पर मनुष्य इतिहास या अतीत में नहीं, वर्तमान में जीता है और वर्तमान का तकाजा यही है कि आज देश का हर एक नागरिक उस लोकतांत्रिक धर्म को भी मानकर चले, जो उसे हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि के साथ-साथ मनुष्य बनाकर उसमें मनुष्योचित गुणों का विकास करता है। जिसकी मिसाल अभी हाल में ही जांबाज अशरफ अली ने अपनी शहादत देकर कायम की है।

❐

दिन हमारा रात हमारी

■ ऋतु मिश्रा

30 नवम्बर को दिल्ली स्थित औरतों की एक संस्था जागोरी द्वारा दिल्ली हाट में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम व उसके बाद एक मशाल रैली का आयोजन किया गया। हाथों में मोमबत्तियां व मशालें लिए लगभग चालीस औरतें दिल्ली हाट के सामने खड़ी थीं। वे नारे लगा रही थीं- दिन हमारा रात हमारी, हमें चाहिए सुरक्षित दिल्ली, सुबह हमारी शाम हमारी। शाम का समय था और सड़क पर ट्रैफिक अपने पूरे वेग से दौड़ रहा था। आस पास पैदल चलते लोगों में एक कौतुहल का भाव था। वे प्रदर्शन कर रही औरतों व उनका साथ दे रहे इक्के-दुक्के पुरुषों से पूछ रहे थे कि भाई ये माजरा क्या है। ये औरतें क्यों चिल्ला रही हैं। पर ये चन्द ही लोग थे और चूंकि ये वाहनों पर सवार नहीं थे इसलिए इनके पास प्रश्न करने का समय था। परंतु बाकी किसी भी वाहन सवार या चालक ने यह जानने व पूछने की ज़हमत नहीं उठाई कि आखिर ये चन्द औरतें क्यों रात में सड़क किनारे खड़ी चिल्ला रही हैं।

ये तो खैर हुई आम आदमी की बात पर यदि हम अपने प्रशासन की बात करें तो उनके एजेंडे में तो औरतों की सुरक्षा का मसला कहीं दूर-दूर तक दिखाई नहीं देता। प्रशासन व सरकार दोनों ही दिल्ली के सफाई अभियान में जुटे हैं। आखिर दिल्ली में 2010 में कॉमनवेल्थ गेम्स जो होने वाले हैं और इन खेलों से पहले दिल्ली को पेरिस बनाना है। झुग्गियों का सफ़ाया लगभग हो ही गया है। सीलिंग का डंडा चारों तरफ घूम ही रहा है। मेट्रो का काम पूरे वेग से चल रहा है। पूरे शहर में अनेकों फ्लाईओवर इधर-उधर उगते नज़र आ रहे हैं। ये सारी कवायद इसलिए चल रही है कि दिल्ली को किसी तरह वर्ल्ड क्लास सिटी बनाना है। अब जब सरकार के कंधों पर इतना भार है तो फिर ये ज़ाहिर है कि शहर को सुरक्षित बनाने का न तो समय है उनके पास न रुचि।

तकरीबन दो साल पहले जब दिल्ली शहर की मानवाधिकार आयोग की रिर्पोट बनाई जा रही थी तो उसमें तीन समस्याओं को मुख्य रूप से रेखांकित किया गया था- बिजली-पानी, सड़कें व औरतों की सुरक्षा। पहली दो समस्याओं को तो सरकार ने अपने एजेंडे में रखा क्योंकि यदि शहर को खूबसूरत बनाना है तो सड़कें तो चिकनी होनी चाहिए जिन पर गाड़ियां सरपट दौड़ सकें व बिजली पानी की समस्या भी सुधारनी होगी ताकि लोग हाहाकार न मचाएं। अब रही बात औरतों की सुरक्षा की तो इस समस्या पर सरकार ने आंखें मूंदी हैं। तो क्या हुआ यदि हर चौबीस घंटे में कुछ औरतें बलात्कार की शिकार हो जाती हैं, तो क्या हुआ यदि हर मिनट कोई न कोई औरत गलियों-सड़कों पर चलते हुए यौन हिंसा की शिकार हो जाती है।

दरअसल बात सिर्फ औरतों की सुरक्षा को एजेंडे पर लाकर भी हल नहीं होने वाली है। जरूरत है मानसिकता बदलने की। राज्य और समाज दोनों का ही दृष्टिकोण औरतों की सुरक्षा के मुद्दे को लेकर एक जैसा है। औरतों की सुरक्षा के कुछ नियम कानून हैं। जो औरतें इन नियमों का पालन नहीं करेंगी उन्हें इसका खामियाजा भुगतना ही पड़ेगा।

एक और बात है जिसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। औरतों की सुरक्षा केवल औरतों का या औरतों के मुद्दों पर काम करने वाली संस्थाओं का ही मुद्दा बनकर रह गई है। यह आम आदमी का मुद्दा नहीं है। इसे मात्र एक खबर मानकर देख या पढ़ लिया जाता है। महिलाओं की इज़्ज़त करने वाले कुछ भले लोग इस पर थोड़ा अफसोस जाहिर कर देते हैं बाकी लोग गलती का ठीकरा औरतों के ही सिर फोड़ देते हैं।

औरतों पर होने वाली हिंसा के बारे में हमारे समाज में कितनी जागरूकता है उसका अंदाजा इस बात से ही लगाया जा सकता है कि पूरे विश्व के पैमाने पर हर साल 25 नवम्बर से 10 दिसम्बर तक सोलह दिनों का एक 'हिंसा विरोधी अभियान' चलाया जाता है जिसमें औरतों के मुद्दों से जुड़े तमाम संगठन अनेक प्रकार की गतिविधियां करते हैं। पर महिला संगठनों के अलावा किसी को इस बारे में पता भी नहीं होता। इनकी गतिविधियां गर्मागर्म नहीं हैं अतः मीडिया भी इसे कोई भाव नहीं देता।

ऐसा नहीं है कि औरतों को सुरक्षित दिल्ली मुहैया कराना कोई असंभव काम है। ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि प्रशासन इसे गंभीरता से ले और इसके उपाय करे। जो नियम जनता से मनवाए जाने हैं उन्हें तो सरकार साम-दाम-दंड-भेद से मनवा ही लेती है। उदाहरण के लिए यदि हम दिल्ली में ट्रैफिक की व्यवस्था को देखें और अगर हम एक मिनट के लिए लोगों की लापरवाहियों की बात न करें तो सड़कों पर वाहन चलाते समय लोगों में ट्रैफिक पुलिस का हौआ तो रहता है। वे वाहन चलाते समय सतर्क रहते हैं कि यदि पकड़े गए तो जेब ढीली करनी ही पड़ेगी। मैं सड़कों से गुज़रते हुए अक्सर देखती हूं कि जहां-जहां ट्रैफिक पुलिस मुस्तैद हैं, बस वाले अपनी लेन में चलते हैं, लोग रेडलाइट जंप नहीं करते व गाड़ियां चलाते समय मोबाइल नहीं सुनते।

साफ जाहिर है कि औरतों को सुरक्षित शहर मुहैया कराने के लिए भी राज्य, समाज व अन्य संस्थाओं को इस मुद्दे को गंभीरता से लेना होगा व इसके लिए गंभीरता से कारगर उपाय करने होंगे। ❒

जनसंघर्षों की झलकियां

लोकतंत्र बचाओ अभियान
लोकतंत्र क्या है और अभियान क्यों

■ आई.एस.डी.

लोकतंत्र बचाओ अभियान की शुरुआत के समय से ही हमारे समक्ष कई तरह के प्रश्न खड़े हुए। इनमें से प्रश्न इस प्रकार के मंच के अस्तित्व से संबंधित थे और आज भी बने हुए हैं। इसका मुख्य कारण ये है कि हम लोकतंत्र को केवल राजनैतिक संसदीय प्रणाली के रूप में देखने के आदी हो चुके हैं। इसके विपरीत हमारा मानना है कि लोकतंत्र राजनैतिक प्रक्रिया होने के साथ-साथ सामाजिक व्यवहार का एक अभिन्न हिस्सा है और दिन प्रतिदिन इसका दायरा सिमटता जा रहा है।

आज चारों तरफ से लोकतंत्र पर हमला हो रहा है भूमंडलीकरण, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद, सैन्यीकरण, परमाणवीकरण, जातिगत भेदभाव, जेंडरगत भेदभाव जैसे मुद्दे लोकतंत्र के दायरे को संकुचित कर रहे हैं यह विडम्बना है कि पिछले 20 वर्षों में कोई भी जनतांत्रिक आन्दोलन सफल नहीं हुआ है और कोई भी मांग लोकतांत्रिक तरीकों से गुजरकर नहीं मनवाई गयी है। इसके विपरीत हिंसात्मक प्रवृत्तियों का सहारा लेकर अनुचित मांगें तक मनवाई जा रही हैं। मौलाना मसूद अज़हर जैसे खतरनाक आतंकवादी को छुड़वाने के लिए कुछ आतंकवादी हवाई जहाज अगवा कर लेते हैं और मजबूरन सरकार को उसे छोड़ना पड़ता है। लेकिन वहीं दूसरी ओर जनता की भलाई से संबंधित किसी भी मांग को सरकार नहीं मानती है क्योंकि वह लोकतांत्रिक तरीके से मांगी जाती है। इस तरह आज बन्दूक की नोक पर मांग मनवा लेने का फैशन चल पड़ा है।

भूमंडलीकरण जीवन के तमाम सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक क्षेत्रों में घुसपैठ करना चाहता है। जिसके लिए वह खुला व्यापार और खुला बाजार जैसी नीतियों का सहारा लेता है। इसे अपने सबसे बड़े उद्योग यानी कि हथियार उद्योग के लिए बाजार व खरीददार चाहिए जिसके लिए जरूरी है कि सीमाओं के बीच लगातार तनाव चलता रहे क्योंकि सीमाओं पर जितना असंतोष होगा उतना ही बाजार में घुसने की संभावनाएं बढ़ेंगी। यह बाजारी शक्तियों के हक में है कि दो देश आपस में लड़ते रहें जिससे कि राष्ट्रवाद को बल मिले। अपने इस मकसद में कामयाब होने के लिए भूमण्डलीकरण की ताकतें जनता में असुरक्षा की दिग्भ्रमित भावना फैलाकर एक दुश्मन पैदा करती हैं या गढ़ती हैं और फिर जनता को इस डर और असुरक्षा से मुक्ति दिलाने के नाम पर बमबारी करती है और युद्ध छेड़ देती है। जैसा कि इराक और अफगानिस्तान में हुआ। इस तरह से यह ताकतें किसी भी देश के संसाधनों पर कब्जा कर लेती हैं।

अमरीका के नेतृत्व में भूमण्डलीकरण की ताकतों ने 11 सितम्बर के हमले के बाद इस्लाम को अपना दुश्मन घोषित कर रखा है और इस्लाम को आतंकवाद का समानार्थी बना दिया गया है। आज आतंकवाद और इस्लाम को एक दूसरे के पूरक के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। यही वह बिंदु है जहां पर आकर भूमंडलीकरण हिन्दुत्ववादी और तालिबानी ताकतें एकजुट हो जाती हैं। यह एक मिथक प्रचार है कि गुजरात दंगों के बाद वहां की अर्थव्यवस्था चरमराई। सच्चाई यह है कि दंगों के दौरान हुई तबाही ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों की घुसपैठ का रास्ता साफ किया है। इस तरह से निजीकरण की प्रक्रिया तेज होती है और इससे अन्ततः अमेरिका को ही फायदा होता है। यह प्रमाणित करता है कि साम्प्रदायिकता और भूमण्डलीकरण एक दूसरे के हाथ ही मजबूत करते हैं। भूमण्डलीकरण की ताकतें सबसे कीमती प्राकृतिक संसाधन तेल पर अपना कब्जा चाहती है और यह जग जाहिर है कि तेल अरब देशों में प्रचुर मात्रा में मौजूद है जहां पर संयोगवश मुसलमान बहुसंख्या में रहते हैं। अब जाहिर सी बात है कि इन संसाधनों पर कब्जा करने हेतु इस्लाम को दुश्मन तथा मुसलमानों को आतंकवादी घोषित कर दिया जाता है ताकि दुश्मन के सफाये के नाम पर अपनी पैशाचिक चालों को जायज ठहराया जा सके। इसी तर्ज पर भारत में सांप्रदायिकता के उभार के संदर्भ में आतंकवाद और इस्लाम को दुश्मन तथा मुसलमानों को आतंकवादी घोषित कर दिया जाता है ताकि दुश्मन के सफाये के नाम पर अपनी पैशाचिक चालों को जायज ठहराया जा सके। इसी तर्ज पर भारत में सांप्रदायिकता के उभार के संदर्भ में आतंकवाद और इस्लाम के इस समानार्थी रिश्ते का हिन्दुत्ववादी ताकतों द्वारा पूरा फायदा उठाया जा रहा है। इसलिए हमें कश्मीर में हो रही आतंकवादी गतिविधियों के बारे में तो मीडिया में खबरें पढ़ने को मिल जाती हैं लेकिन उसके दूसरी ओर उत्तर-पूर्व भारत में सक्रिय आतंकवाद पर हमारी नजर ही नहीं जाती या दूसरे शब्दों में कहा जाए तो जनता की नजरों में उत्तर-पूर्व में

आतंकवाद जितना व्यापक है वह पाकिस्तान, अफगानिस्तान या कश्मीर में हो रही आतंकवादी गतिविधियों से कहीं अधिक है। लेकिन फासीवादी ताकतें आतंकवाद और सांप्रदायिकता को एक ही रूप देखना चाहती हैं। इसलिए समय-समय पर कश्मीर में पाकिस्तान समर्थित आतंकवाद का ढिंढोरा पीटती हैं और मुसलमानों को शैतान के रूप में प्रचारित करती हैं। अक्षरधाम या रघुनाथ मंदिर पर हमला करके आतंकवादी फासीवादी ताकतों के लिए अल्पसंख्यकों को कत्लेआम करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं इस तरह आतंकवाद जितना बढ़ेगा उतना ही साम्प्रदायिकता को बल मिलेगा।

भूमण्डलीकरण की सबसे गहरी मार वंचित समुदायों पर पड़ी है यानि दलित, आदिवासी और महिला। एक ओर तो दलितों से उनकी जमीनें छीन ली गई हैं और दूसरी ओर सांप्रदायिक ताकतें धर्म और संस्कृति के नाम पर उनको निशाना बनाती रहती हैं। एक तरफ उच्च जाति समूह द्वारा उन पर जुल्म ढाये जा रहे हैं तो दूसरी ओर फासीवादी ताकतें अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए इन्हें बतौर मोहरा इस्तेमाल करने से नहीं चूकती हैं जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हम गुजरात दंगों में देख चुके हैं। भूमंडलीकरण और फासीवादी ताकतों ने महिलाओं की स्थिति बद से बदतर ही की है। सांप्रदायिकता तो अपने आप में जेंडरगत भेदभाव लिये रहती है क्योंकि राष्ट्रवाद पर बोलने के लिए तथाकथित "पौरुषगुणों" की आवश्यकता पड़ती है। इसका स्पष्ट उदाहरण हम भारत-पाकिस्तान मुद्दे को उछालते समय देख सकते हैं। उस समय जिस तरह की बयानबाजी दोनों देशों की ओर से होती है। वह जेंडरगत भेदभाव को ही उजागर करती है। जैसे "हाथों में चूड़ियां पहन लो", "परमाणु कार्यक्रम हमारी माँ-बहन के समान है" इत्यादि।

भूमण्डलीकरण, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद, सैन्यीकरण, परमाणवीकरण, जातिगत भेदभाव, जेंडरगत भेदभाव के बीच मौजूद इस संबंध के संदर्भ में जरूरत यह है कि इस तरह की समग्र दृष्टि जनता तक पहुंचायी जाए ताकि वे समझें कि यह पूरी प्रक्रिया हमारे देश के सामाजिक ताने-बाने को निशाना बना रही है। आज सांप्रदायिकता का चरित्र पूरी तरह बदल चुका है और इसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। आज के भारत के सांप्रदायिकता के सवाल में जूझते समय भूमंडलीकरण, परमाणवीकरण, सैन्यीकरण व आतंकवाद जैसे सवालों की अनदेखी नहीं की जा सकती। सांप्रदायिकता का उद्देश्य है भूमंडलीकरण की ताकतों को गरीबों का शोषण करने में मदद करना है। विकसित देशों का सामान हमारे बाजारों में तभी बिक सकता है जब हमारे बाजारों में सामान बन्द हो जाय और जनता की क्रयशक्ति बढ़ जाय। जनता की क्रयशक्ति तभी बढ़ेगी जब एक समाज दूसरे समाज का धर्म और संस्कृति के नाम पर शोषण करे। एक समाज का दूसरे समाज का शोषण करने के लिए हिंदुत्ववादी ताकतें हर प्रकार के हथकंडे अपना रही हैं। यह कई मोर्चों पर लड़ी जाने वाली लड़ाई है और इसके प्रति रणनीति तथा दृष्टिकोण भी उसी तरह बनाना होगा। लोकतंत्र की हिफाजत के लिए क्या किया जाय इसके लिए आई.एस.डी., नई दिल्ली के पहल पर समान सोच वाली संगठनों व प्रगतिशील लोगों के बीच बातचीत के बाद इस कार्यक्रम की शुरुआत की गयी। इस अभियान का गठन 8 राज्यों के स्वयंसेवी संगठनों ने आपस में चर्चा करके लखनऊ में विधिवत 14 दिसम्बर 2003 को शुरू किया।

11 सितम्बर 2001 को अमेरिका पर हुए हमले ने विश्व की एक समग्र तस्वीर रखने की जरूरत पैदा की है इसलिए इस काम की शुरुआत के लिए हमें कई घटनाओं के अंतर्संबंध और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे दुष्चक्रों के एक हिस्से के रूप में देखना जरूरी हो गया है। चाहे 11 सितम्बर के बाद अफगानिस्तान पर हुई बमबारी हो या इराक में विध्वंसकारी हथियारों की बरामदगी के लिए हुआ युद्ध हो, हम किसी भी घटना को अकेले में नहीं देख सकते। आजाद भारत में हुआ आज तक का सबसे बड़ा सांप्रदायिक दंगा यानी गुजरात जनसंहार, अमेरिका की आतंक के खिलाफ युद्ध की घोषणा, जम्मू-कश्मीर विधानसभा तथा 13 दिसम्बर को भारतीय संसद पर हुये हमले की घटनाओं के बीच संबंध को तलाशना जरूरी है। इन घटनाओं की वजह से भारत-पाक सीमा पर सेनाओं का सैलाब सा आ गया था और युद्ध के आसार नजर आने लगे थे। गौरतलब है कि सितम्बर में हमला अमेरिका पर होता है और तकरीबन 5 महीने तक सेनाओं का जमावड़ा हमारी सीमा पर होता है। इस पूरी प्रक्रिया ने संघ गिरोह को वैधता दी जो हमेशा से अल्पसंख्यकों के सफाये के लिए मौका तलाश कर रहा था और साबरमती एक्सप्रेस पर हुए हमले ने उसे यह मौका दिया।

जनता की मूलभूत जरूरतें सरकारी जिम्मेदारी के तहत पूरी हों, यह लोकतांत्रिक प्रतिक्रिया का हिस्सा है यानि जब सरकार जनता को सहयोग करे और ऐसा ही व्यवहार अब आम जनजीवन में होता है यानि परस्पर सहयोग और मेलजोल, तो लोकतंत्र को और मजबूती मिलती है। यही वजह है कि फासीवादी ताकतें आज तक अपने एजेंडे में पूरी तरह से सफल नहीं हो पायी हैं। फासीवादी ताकतें हमेशा संविधान बदलने और राष्ट्रपति शासन व्यवस्था की मांग करती रही हैं। लेकिन अगर वे आज तक सफल नहीं हो पायी हैं तो उसकी वजह है आम जीवन में सहयोग की भावना। जनता के सहयोग के बिना फासीवाद स्थापित नहीं हो सकता। सदन में सवाल उठा कि जनता के सहयोग के बिना फासीवाद नहीं आ सकता तो फिर गुजरात में दंगे क्यों हुए? इस सवाल के जवाब में बातचीत के दौरान उभरकर आया कि दंगे हमेशा प्रायोजित होते हैं। माहौल ऐसा बनाया जाता है जिससे आम जनता दंगे की सूत्रधार बन जाती है।

लोकतंत्र बचाओ अभियान एवं सदस्य संगठनों द्वारा आयोजित
सूचना अधिकार अधिनियम 2005 क्रियान्वयन के लिये
"परामर्श शिविर एवं धरना कार्यक्रम"
कार्यक्रम तिथि - 18.11.2006 से 24.11.2006
समय : प्रातः 10.00 बजे से सायं 5.00 बजे तक
स्थान : जिलाधिकारी कार्यालय जौनपुर
समय सारिणी

दिनांक	प्रतिभागी संस्थाओं का नाम	संस्था प्रमुख का नाम	संपर्क नम्बर
18.11.06	सर्वोदय सेवा संस्थान पतहना	शशिधर	9415897298
18.11.06	मानधाता मानव कल्याण सेवा संस्थान परसनी	प्रमोद	9235616656
20.11.06	भारतीय जन सेवा आश्रम बदलापुर	दौलत राम	9415315091
20.11.06	सहभागी जन कल्याण समिति उमरी	अवधेश पैन्थर	
21.11.06	उदय सेवा कल्याण समिति मझगवा	धुरंधर	9919407691 (पी.पी.)
21.11.06	ज्योति जन कल्याण सेवा समिति कलन्दरपुर	डॉ. लल्लन	9919044906
22.11.06	राष्ट्रीय जन विकास संस्थान लेदुका	राजमणि	9450085584
22.11.06	अखिल भारतीय युवा विकास संगठन जौनपुर	प्रशांत	9335532819
23.11.06	राष्ट्रीय जागृति सेवा समिति बरपुर	विनोद	9236061280
23.11.06	सिद्धार्थ जू.हा.स्कूल पदुमपुर	डॉ. प्रमेन्द	9935417513
23.11.06	साइन ट्रस्ट जौनपुर	सुशील	9235771648
23.11.06	स्वर्गीय शेख नुरुला मेमोरियल सोसायटी	अली मंसर डेज़ी	
24.11.06	ग्राम विकास युवा मण्डल अहमदपुर	रामआश्रय	05452-325180 (पी.पी.)
24.11.06	डॉ. अम्बेडकर सामाजिक कल्याण समिति आनापुर	जोखनराम	05452-690479
24.11.06	मारूति संस्था जौनपुर	डॉ. अंशु	9235892893
24.11.06	राष्ट्रीय ग्रामीण विकास समिति बहरीपुर	महंतराज	9451148969
विशेष :			
18 से 24 नवंबर 06			
	आजाद शिक्षा केन्द्र सिपाह	निसार अहमद खान	9415315484
	ग्रामीण विकास एवं प्रशिक्षण संस्थान कटका	रमेशचन्द्र यादव	9451714796
	जनसहभागिता ट्रस्ट लोहगाजर	गोपाल जी	05450-232930 (पी.पी.)
	स्पेस लखनऊ	सचिन अग्रवाल	9415255042

हिंदी भाषी क्षेत्र में समान समझ के लोगों ने इस नेटवर्क की शुरुआत की। इस नेटवर्क में अभी तक उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के कुछ साथी व संस्थायें सदस्य के रूप में जुड़ी हैं तथा झारखंड व उत्तराखंड में नेटवर्क को बढ़ाने की बात सोच रहे हैं। उत्तर प्रदेश में नेटवर्क काफी सक्रिय रूप से काम कर रहा है। सूचना के अधिकार को लेकर 'लोकतंत्र बचाओ अभियान' के सदस्य उत्तर प्रदेश में काफी काम कर रहे हैं। ❐

ठिठुरता हुआ गणतन्त्र

■ हरिशंकर परसाई

चार बार में गणतन्त्र-दिवस का जलसा दिल्ली में देख चुका हूँ। पाँचवी बार देखने का साहस नहीं। आखिर यह क्या बात है कि हर बार जब मैं गणतन्त्र-समारोह देखता, तब मौसम बड़ा क्रूर रहता। छब्बीस जनवरी के पहले ऊपर बर्फ पड़ जाती है। शीत-लहर आती है, बादल छा जाते हैं, बूँदाबाँदी होती है और सूर्य छिप जाता है। जैसे दिल्ली की अपनी अर्थनीति नहीं है, वैसे ही अपना मौसम भी नहीं है। अर्थनीति जैसे डालर, पौण्ड, रुपया, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष या भारत-सहायता क्लब से तय होती है, वैसे ही दिल्ली का मौसम कश्मीर, सिक्किम, राजस्थान आदि तय करते हैं।

इतना बेवकूफ भी नहीं हूँ कि मान लूँ, जिस साल मैं समारोह देखता हूँ, उसी साल ऐसा मौसम रहता है। हर साल देखने वाले बताते हैं कि हर गणतन्त्र-दिवस पर मौसम ऐसा ही धूपहीन ठिठुरन वाला होता है।

आखिर बात क्या है? रहस्य क्या है?

जब कांग्रेस टूटी नहीं थी, तब मैंने एक कांग्रेस मन्त्री से पूछा था कि यह क्या बात है कि हर गणतन्त्र-दिवस को सूर्य छिपा रहता है? सूर्य की किरणों के तले हम उत्सव क्यों नहीं मना सकते? उन्होंने कहा—'ज़रा धीरज रखिए। हम कोशिश में लगे हैं कि सूर्य बाहर आ जाये। पर इतने बड़े सूर्य को बाहर निकालना आसान नहीं है। वक्त लगेगा। हमें सत्ता के कम-से-कम सौ वर्ष तो दीजिए !'

दिये। सूर्य को बाहर निकालने के लिए सौ वर्ष दिये, मगर हर साल उसका कोई छोटा कोना निकलता तो दिखना चाहिए। सूर्य कोई बच्चा तो है नहीं जो अन्तरिक्ष की कोख में अटका है, जिसे आप एक दिन ऑपरेशन करके निकाल देंगे।

इधर जब कांग्रेस के दो हिस्से हो गये तब मैंने एक इण्डिकेटी कांग्रेसी से पूछा। उसने कहा---'हम हर बार सूर्य को बादलों से बाहर निकालने की कोशिश करते थे, पर हर बार सिण्डिकेट वाले अड़ंगा डाल देते थे। अब हम वादा करते हैं कि अगले गणतन्त्र-दिवस पर सूर्य को निकालकर बतायेंगे।'

एक सिण्डिकेटी पास खड़ा सुन रहा था। वह बोल पड़ा—'यह लेडी (प्रधानमंत्री) कम्युनिस्टों के चक्कर में आ गयी है। वही उसे उकसा रहे हैं कि सूर्य को निकालो। उन्हें उम्मीद है, बादलों के पीछे से उनका प्यारा 'लाल सूरज' निकलेगा। हम कहते हैं कि सूर्य को निकालने की क्या जरूरत है ? क्या बादलों को हटाने से काम नहीं चल सकता ?'

मैं संसोपाई भाई से पूछता हूँ। वह कहता है—'सूर्य गैर-कांग्रेसवाद पर अमल कर रहा है। उसने डाक्टर लोहिया के कहने से हमारा पार्टी-फार्म भर दिया था। कांग्रेसी प्रधानमंत्री को सलामी लेते वह कैसे देख सकता है? किसी गैर-कांग्रेसी को प्रधानमंत्री बना दो, तो सूर्य क्या, उसके अच्छे भी निकल पड़ेंगे ?

जनसंघी भाई से भी मैंने पूछा। उसने साफ कहा—'सूर्य सेक्युलर होता तो इस सरकार की परेड में निकल आता। इस सरकार से आशा मत करो कि वह भगवान अंशुमाली को निकाल सकेगी। हमारे राज्य में ही सूर्य निकलेगा।'

साम्यवादी ने मुझसे साफ कहा—'यह सब सी.आई.ए. का षड्यन्त्र है। सातवें बेड़े से बादल दिल्ली भेजे जाते हैं।'

स्वतन्त्र पार्टी के नेता ने कहा—'रूस का पिछलग्गू बनने का और क्या नतीजा होगा !'

प्रसोपा के भाई ने अनमने ढंग से कहा—'सवाल पेचीदा है। नेशनल कौंसिल की अगली बैठक में इसका फैसला होगा। तब बताऊँगा।'

राजाजी से मैं मिल न सका। मिलता, तो वह इसके सिवा क्या कहते कि इस राज में तारे निकलते हैं, यही गनीमत है।

मैं इन्तजार करूंगा, जब भी सूर्य निकले।

स्वतन्त्रता-दिवस भी तो भरी बरसात में होता है। अंग्रेज बहुत चालाक हैं। भरी बरसात में स्वतन्त्र करके चले गये। उस कपटी प्रेमी की तरह भागे, जो प्रेमिका का छाता भी ले जाये। वह बेचारी भीगती बस-स्टैण्ड जाती है, तो उसे प्रेमी की नहीं, छाता-चोर की याद सताती है।

स्वतन्त्रता दिवस भीगता है और गणतन्त्र-दिवस ठिठुरता है।

मैं ओवरकोट में हाथ डाले परेड देखता हूँ। प्रधानमंत्री किसी विदेशी मेहमान के साथ खुली गाड़ी में निकलती हैं। रेडियो टिप्पणीकार कहता है ...'घोर करतल-ध्वनि हो रही है।' मैं देख रहा हूँ, नहीं हो रही है। हम सब तो कोट में हाथ डाले बैठे हैं। बाहर निकालने का जी नहीं होता। हाथ अकड़ जायेंगे।

लेकिन हम नहीं बजा रहे हैं, फिर भी तालियाँ बज रही हैं। मैदान में जमीन पर बैठे वे लोग बजा रहे हैं, जिनके पास हाथ गरमाने के लिए कोट नहीं है। लगता है, गणतन्त्र ठिठुरते हुए हाथों की तालियों पर टिका है। गणतन्त्र को उन्हीं हाथों की ताली मिलती है, जिनके मालिक के पास हाथ छिपाने के लिए गर्म कपड़ा नहीं है।

पर कुछ लोग कहते हैं—'गरीबी मिटनी चाहिए।' तभी दूसरे कहते हैं—'ऐसा कहने वाले प्रजातन्त्र के लिए खतरा पैदा कर रहे हैं।'

गणतन्त्र-समारोह में हर राज्य की झाँकी निकलती है। ये अपने राज्य का सही प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। 'सत्यमेव जयते'

हमारा मोटो है मगर झाँकियाँ झूठ बोलती हैं। इनमें विकास-कार्य, जनजीवन, इतिहास आदि रहते हैं। असल में हर राज्य को उस विशिष्ट बात को यहाँ प्रदर्शित करना चाहिए जिसके कारण पिछले साल वह राज्य मशहूर हुआ। गुजरात की झाँकी में इस साल दंगे का दृश्य होना चाहिए, जलता हुआ घर और आग में झोंके जाते बच्चे। पिछले साल मैंने उम्मीद की थी कि आन्ध्र की झाँकी में हरिजन जलाते हुए दिखाये जायेंगे। मगर ऐसा नहीं दिखा। यह कितना बड़ा झूठ है कि कोई राज्य दंगे के कारण अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति पाये, लेकिन झाँकी सजाये लघु-उद्योगों की। दंगे से अच्छा गृह-उद्योग तो इस देश में दूसरा है नहीं। मेरे मध्य प्रदेश ने दो साल पहले सत्य के नजदीक पहुँचने की कोशिश की थी। झाँकी में अकाल-राहत कार्यों के कारण नहीं, राहत-कार्यों में घपले के कारण मशहूर हुआ था। मेरा सुझाव माना जाता तो मैं झाँकी के झूठे मस्टर-रोल भरते दिखाता, चुकारा करने वाले का अँगूठा हजारों मूर्खों के नाम के आगे लगवाता, नेता, अफसर, ठेकेदार के बीच लेन-देन का दृश्य दिखता। उस झाँकी में वह बात नहीं आयी। पिछले साल स्कूलों की 'टाट-पट्टी काण्ड' से हमारा राज्य मशहूर हुआ। मैं पिछले साल की झाँकी में यह दृश्य दिखाता—मन्त्री, अफसर वगैरह खड़े हैं और टाट-पट्टी खा रहे हैं।

जो हाल झाँकियों का, वही घोषणाओं का। हर साल घोषणा की जाती है कि समाजवाद आ रहा है। पर अभी तक नहीं आया। कहाँ अटक गया ? लगभग सभी दल समाजवाद लाने का दावा करते हैं, लेकिन वह नहीं आ रहा।

मैं एक सपना देखता हूँ। समाजवाद आ गया है और बस्ती के बाहर टीले पर खड़ा है। बस्ती के लोग आरती सजाकर उसका स्वागत करने को तैयार खड़े हैं। पर टीले को घेरे खड़े हैं कई तरह के समाजवादी। उनमें से हरेक लोगों से कहकर आया है कि समाजवाद को हाथ पकड़कर मैं ही लाऊँगा।

समाजवाद टीले से चिल्लाता है—'मुझे बस्ती में ले चलो।'

मगर टीले को घेरे समाजवादी कहते हैं—'पहले यह तय होगा कि कौन तेरा हाथ पकड़कर ले जायेगा !'

समाजवादी की घेराबन्दी कर रखी है। संसोपा-प्रसोपा वाले जनतान्त्रिक समाजवादी हैं, पीपुल्स डेमोक्रेसी और नेशनल डेमोक्रेसी वाले साम्यवादी हैं, दोनों तरह के कांग्रेसी हैं, सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर वाले हैं। क्रांतिकारी समाजवादी हैं। हरेक समाजवाद का हाथ पकड़कर उसे बस्ती में ले जाकर लोगों से कहना चाहता है—'लो, मैं समाजवाद ले आया।'

समाजवाद परेशान है। उधर जनता भी परेशान है। समाजवाद आने को तैयार खड़ा है, मगर समाजवादियों में आपस में धौल-धप्पा हो रहा है। समाजवाद एक तरफ उतरना चाहता है कि उस पर पत्थर पड़ने लगते हैं। 'खबरदार, उधर से मत जाना !' एक समाजवादी उसका एक हाथ पकड़ता है, तो दूसरा हाथ पकड़कर उसे खींचता है। तब बाकी समाजवादी छीना-झपटी करके हाथ छुड़ा देते हैं। लहूलुहान समाजवाद टीले पर खड़ा है।

इस देश में जो जिसके लिए प्रतिबद्ध है, वही उसे नष्ट कर रहा है। लेखकीय स्वतन्त्रता के लिए प्रतिबद्ध लोग ही लेखक की स्वतन्त्रता छीन रहे हैं। सहकारिता के लिए प्रतिबद्ध इस आन्दोलन के लोग ही सहकारिता को नष्ट कर रहे हैं। सहकारिता तो एक स्पिरिट है। सब मिलकर सहकारितापूर्वक खाने लगते हैं और आन्दोलन को नष्ट कर देते हैं। समाजवाद को समाजवादी ही रोके हुए हैं।

यों प्रधानमंत्री ने घोषणा कर दी है कि अब समाजवाद आ ही रहा है।

मैं एक कल्पना कर रहा हूँ।

दिल्ली में फरमान जारी हो जायेगा—'समाजवाद सारे देश के दौरे पर निकल रहा है। उसे सब जगह पहुंचाया जाय। उसके स्वागत और सुरक्षा का पूरा बन्दोबस्त किया जाय।'

एक सचिव दूसरे सचिव से कहेगा—'लो, ये एक और वी. आई.पी. आ रहे हैं। अब इनका इन्तजाम करो। नाक में दम है।'

कलेक्टरों को हुक्म चला जायेगा। कलेक्टर एस.डी.ओ. को लिखेगा, एस.डी.ओ. तहसीलदार को।

पुलिस-दफ्तरों में फरमान पहुँचेंगे, समाजवाद की सुरक्षा की तैयारी करो।

दफ्तरों में बड़े बाबू छोटे बाबू से कहेंगे—'काहे हो तिवारी बाबू, एक कोई समाजवाद वाला कागज आया था न ! ज़रा निकालो !'

तिवारी बाबू कागज निकालकर देंगे। बड़े बाबू फिर से कहेंगे—'अरे वह समाजवाद तो परसों ही निकल गया। कोई लेने नहीं गया स्टेशन। तिवारी बाबू, तुम कागज दबाकर रख लेते हो। बड़ी खराब आदत है तुम्हारी।'

तमाम अफसर लोग चीफ-सेक्रेटरी से कहेंगे—'सर, समाजवाद बाद में नहीं आ सकता ? बात यह है कि हम उसकी सुरक्षा का इन्तजाम नहीं कर सकेंगे। दशहरा आ रहा है। दंगे के आसार हैं। पूरा फोर्स दंगे से निपटने में लगा है।'

मुख्य सचिव दिल्ली लिख देगा—'हम समाजवाद की सुरक्षा का इन्तजाम करने में असमर्थ हैं। उसका आना मुल्तवी किया जाय।'

जिस शासन-व्यवस्था में समाजवाद के आगमन के कागज दब जायें और जो उसकी सुरक्षा की व्यवस्था न करे, उसके भरोसे समाजवाद लाना है तो ले आओ। मुझे खास ऐतराज भी नहीं है। जनता के द्वारा न आकर अगर समाजवाद दफ्तरों के द्वारा आ गया तो एक ऐतिहासिक घटना हो जायेगी। ❐

isd इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस,
62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067
टेलीफोन 011-26177904, टेलीफैक्स 011-26177904, ईमेल : notowar@rediffmail.com

केवल सीमित वितरण के लिए